

तृतीयोऽध्यायः संस्कारवर्णनम् संस्कार का वर्णन

शतानीक उवाच

जातकर्मादिसंस्कारान्वर्णानामनुपूर्वशः। आश्रमाणां च मे धर्मं कथयस्व द्विजोत्तम॥ १॥
शतानीक कहते हैं- हे द्विजोत्तम! समस्त वर्णों के जातकर्मादि समस्त संस्कार तथा आश्रमधर्म हैं, उनको कहने की कृपा करें॥ १॥

सुमन्तुरुवाच

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा। जातकर्मात्रप्राशश्च चूडामौञ्जीनिबन्धनम्॥ २॥
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते। स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया श्रुतैः॥ ३॥
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः। शृणुष्वैकमना राजन्यथा सा क्रियते तनुः॥ ४॥

सुमन्तु कहते हैं- हे राजन्! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन संस्कार करने वाले द्विजगण के वे सभी दोष दूर हो जाते हैं, जो बीज तथा गर्भकाल में उत्पन्न होते हैं। स्वाध्याय, व्रत, हवन, वेदत्रयी के अध्ययन, महान् तथा ब्राह्मीय यज्ञादि अनुष्ठान द्वारा शरीर ब्रह्मवर्चस युक्त हो जाता है॥ २-४॥

प्राङ्नाभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म विधीयते। मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्॥ ५॥
नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव। द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णे तथा परे॥ ६॥
अष्टादशेऽहनि तथाऽन्ये वदन्ति मनीषिणः। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते॥ ७॥
मङ्गल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेतिपार्थिव। राजन्यस्य विशिष्टं तु इन्दुवर्मेति कथ्यते॥ ८॥

हे राजन्! अब समाहित चित्त से यह सुनिये कि ये संस्कार शरीर को कैसे ब्रह्मतेज सम्पन्न कर देते हैं? पुरुष सन्तान (लड़का) के नालोच्छेदन के पूर्व जातकर्म संस्कार किया जाये। तब वेदमन्त्रोच्चार के साथ स्वर्ण-मधु एवं घृत का प्राशन कराये। हे पार्थिव! हे राजन्! किसी आचार्य के मतानुसार जन्म की दशम तिथि को नामकरण करें, अन्य के मत से द्वादश तिथि को, किसी के मत से एक मास होने पर, कुछ पण्डितों के मतानुसार अष्टादश तिथि को नामकरण करें। पुण्यतिथि, शुभनक्षत्र, शुभमुहूर्त उपस्थित होने पर ब्राह्मण बालक का नामकरण 'शर्मन्' पदवी लगाकर करें। क्षत्रिय बालक का 'वर्मन्' लगाकर विशेष रूप से नामकरण संस्कार करें॥ ५-८॥

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम्। धनवर्धनेति वैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे॥ ९॥
मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम्। शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्वाज्ञो रक्षासमन्वितम्॥ १०॥
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्। स्त्रीणां सुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थमनोरमम्॥ ११॥
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्। द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्॥ १२॥

वैश्य का नाम 'धन' संयुक्त हो जैसे धनवर्द्धन आदि। शूद्र का नाम कुछ जुगुप्सायुक्त हो, यथा सर्वदास इत्यादि। मनु द्वारा नाम के लक्षण हेतु कहा गया है कि ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के नाम के साथ रक्षार्थक वर्मा आदि तथा वैश्य के नाम के साथ पुष्टिप्रद संज्ञा लगाये। शूद्र का नाम दास्यभाव युक्त हो। स्त्रीगण के नाम अक्रूर, सुखद, मनोरम, स्पष्ट अर्थ वाले, मांगलिक तथा अन्त में दीर्घ वर्ण समन्वित होने चाहिये। वे आशीर्वाद की भावना प्रकट करने वाले हों। हे राजेन्द्र! द्वादश दिवस पूर्ण होने पर उस दिन शिशु का गृह से निष्क्रमण हो॥ ९-१२॥

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं तथान्येषां मतं विभो। षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यथेष्टं मङ्गलं कुले॥ १३॥
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं कुरुनन्दन॥ १४॥
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादिकादशे राजन्क्षत्रियस्य विनिर्दिशेत्॥ १५॥
द्वादशेऽब्देऽपि गर्भात्तु वैश्यस्य व्रतमादिशेत्। ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे॥ १६॥
बलार्थिना तथा राज्ञः षष्ठेऽब्दे कार्यमेव हि। अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन॥ १७॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। द्वाविंशतेः क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥ १८॥

कतिपय आचार्यों के अनुसार शिशु का गृह से निष्क्रमण चतुर्थ मास की आयु में हो। षष्ठ मास में अन्नप्राशन करने से परिवार का मंगल होता है। हे कुरुनन्दन! द्विज जाति में शिशु का चूडाकर्म प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में करें। हे राजन्! ब्राह्मण बालक का उपनयन गर्भ से अष्टम वर्ष में, क्षत्रिय बालक का गर्भ से ११वें वर्ष में, वैश्य बालक का १२वें वर्ष में नियमानुरूप माना गया है। अधिक काल ब्रह्मवर्चस की कामना वाले ब्राह्मण शिशु का उपनयन पंचम वर्ष में, क्षत्रिय बालक का अधिक बली होने की कामना से उपनयन छठे वर्ष, वैश्य बालक का उपनयन अधिक धनार्जन की कामना के साथ अष्टम वर्ष में सम्पन्न कराये। १६ वर्ष की अवस्थापर्यन्त ब्राह्मण सावित्री का अतिक्रमण न करें। इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण का उपनयन १६वें वर्ष पर्यन्त ही हो जाना चाहिये। क्षत्रिय का २२ वर्ष की आयु के पूर्व तथा वैश्य का २४वें वर्ष की आयु तक ही उपनयन हो सकता है॥ १३-१८॥

अत ऊर्ध्वं तु ये राजन्यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः॥ १९॥
न चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मं यौनं च सम्बन्धमाचरेद्ब्राह्मणैः सह॥ २०॥
भवन्ति राजंश्चर्मणि व्रतिनां त्रिविधानि च। कार्ष्णारौरवबास्तानि ब्रह्मक्षत्रविशां नृप॥ २१॥
वसीरंश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विविधानि तु। ब्रह्मक्षत्रविशो राजञ्छाणक्षौमादिकानि च॥ २२॥
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला। क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी॥ २३॥

हे राजन्! यदि इससे अधिक आयु हो जाये, तब उपनयन नहीं हो सकता। ऐसा व्यक्ति असंस्कृत होता है। वे सावित्री से पतित हो जाते हैं। तब वे व्रात्य होते हैं। उनके लिये व्रात्यस्तोम यज्ञ करना होगा। इस प्रकार का जो अपवित्र है उससे आपत्तिकालीन सम्बन्ध, अध्ययन-अध्यापन अथवा यौन सम्बन्ध (विवाहादि) ब्राह्मण न रखे। हे राजन्! जो उपनयन व्रत वाले हैं उन ब्राह्मणों हेतु कृष्णसार मृगचर्म, क्षत्रिय हेतु रुरु मृगचर्म तथा वैश्य हेतु बकरे का चर्म विहित है। हे राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रमानुसार सन, रेशम, आदि विविध वस्त्रों को पहनें। उपनयनार्थ ब्राह्मण की मेखला मूँज की त्रिसूती तीन लड़ी वाली, समान तथा चिकनी हो। क्षत्रिय की मूर्वा से बनी मेखला हो। वैश्य सन के रेशे की मेखला धारण करें॥ १९-२३॥

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः। त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव च॥ २४॥
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृत्तं त्रिवृत्। शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम्॥ २५॥
पुष्कराणि तथा चैषां भवन्ति त्रिविधानि तु। ब्रह्मणो बैल्वपालाशौ तृतीयं प्लक्षजं नृप॥ २६॥
वाटखादिसौ क्षत्रियस्तु तथान्यं वेतसोद्भवम्। पैलवोदुम्बरौ वैश्यस्तथाश्वत्थजमेव हि॥ २७॥

दण्डानेतान्महाबाहो धर्मतोऽर्हन्ति धारितुम्। केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः॥ २८॥
ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः। ऋजवस्ते तु सर्वे स्युर्बाह्याः सौम्यदर्शनाः॥ २९॥

जब मूंज न हो तब ब्राह्मण कुश, अश्मन्तक अथवा बल्वज की मेखला बनायें। एक गाँठ बाँधकर तीन लड़ी बनायें। अथवा तीन अथवा ५ गाँठ बाँधें। ब्राह्मण का उपवीत कपास की तीन लड़ी वाला ऊर्ध्ववृत्त हो। क्षत्रियगण का सन के सूत का, वैश्यों का भेड़ के रोम का बना हो। हे राजन्! तीनों वर्णों के ब्रह्मचारीगण के दण्ड इस प्रकार से हों। यथा— ब्राह्मण बेल-पलाश अथवा पाकर का दण्ड लें। क्षत्रिय बरगद, खैर अथवा बेंत का दण्ड लें। वैश्य गूलर, पीपल अथवा पीतु वृक्षदण्ड को ग्रहण करें। हे महाबाहो! यज्ञोपवीत संस्कार काल में ये दण्ड धर्मतः धारण करना होगा। ब्राह्मणों का दण्ड भूमि से लेकर उसके केशान्त (भाग) तक का लम्बा हो। क्षत्रिय का ललाट पर्यन्त लम्बा हो। वैश्यों का नासिका के अन्त तक का हो। ये सभी दण्ड सीधे एवं सुन्दर हों। वे देखने में सौम्यदर्शन हों॥ २४-२९॥

अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः। प्रगृह्य चेप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम्॥ ३०॥
सम्यगगुरुं तथा पूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि। भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः॥ ३१॥
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम्। मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्॥ ३२॥
भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चैनं नावमानयेत्। सुवर्णं रजतं चात्रं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत्॥ ३३॥
समाहृत्य ततो भैक्ष्यं यावदर्थममायया। निवेद्य गुरवेऽग्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः॥ ३४॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः। श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः॥ ३५॥

इन दण्डों को देखने से मनुष्य उद्वेगग्रस्त न हो। दण्ड छालयुक्त हों। कहीं भी अग्निदग्ध न हों। अपने वर्ण हेतु ईप्सित दण्ड लेकर पहले भास्करदेव की अर्चना-वन्दना करके समुचित रूप से गुरु की पूजा के उपरान्त ही ब्रह्मचारी भिक्षाटन करे। उपनीत ब्राह्मण भिक्षा माँगने हेतु जाने पर वाक्य के आरंभ में 'भवत्' लगाये। क्षत्रिय वाक्य के मध्य में 'भवत्' शब्द लगाये। वैश्य अन्त में 'भवत्' शब्द का प्रयोग करे। सर्वप्रथम माता, बहन अथवा मौसी से भिक्षा माँगनी चाहिये। जो भिक्षा देती है, उसे सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में भिक्षात्र देने का निर्देश है। इस भिक्षाटन से प्राप्त द्रव्यादि को ब्रह्मचारी मोह-मायारहित होकर गुरु को अर्पित करे। वह पवित्र होकर आचमनोपरान्त पूर्वाभिमुख भोजन करे। इससे दीर्घायु होती है। दक्षिणमुख भोजन से यश, पश्चिममुख भोजन से धन, उत्तरमुख भोजन से ऋत् की प्राप्ति होती है॥ ३०-३५॥

उपस्पृश्य द्विजो राजन्नन्नमद्यात्समाहितः। भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥ ३६॥
तथात्रं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दर्शनात्तस्य हृष्येद्दे प्रसीदेच्चापि भारत॥ ३७॥
अभिनन्द्य ततोऽग्नीयादित्येवं मुनरब्रवीत्। पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति॥ ३८॥
अपूजितं तु तदभुक्तमुभयं नाशयेदिदम्। नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथान्तरा॥ ३९॥
यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम। विनाशं याति स नर इह लोके परत्र च॥

यथाभवत्पुरा वैश्यो धनवर्द्धनसंज्ञितः॥ ४०॥

हे राजन्! द्विज को चाहिये कि समाहित मन से विधिवत् आचमनोपरान्त अन्न ग्रहण करे। भोजनोपरान्त भी जल से विधिवत् आचमन करके इन्द्रियों का स्पर्श करे। अन्न के प्रति सदैव आदरभाव रखे। उसके प्रति कुत्सित भावना नहीं रखनी चाहिये। अन्न का अभिनन्दन करके उसे ग्रहण करने के लिये मनु का आदेश है। जो अन्न पूजित हो जाता है, उससे बल एवं ओज की प्राप्ति होती है। जो बिना अभिनन्दन किये अन्न ग्रहण करता है, वह उसके बल तथा ओज का नाश करता है। स्वयं जूठन खाना अथवा अन्य को जूठन देना वर्जित है। यदि स्वयं भक्षण के पश्चात् जूठा छोड़ देते हैं, तब उसे भी कुछ समयोपरान्त नहीं ग्रहण करना चाहिये। हे नृपोत्तम! लोभवश जो अपने जूठन को कुछ देर बाद पुनः खाता है, वह उसी प्रकार से नाश को प्राप्त होता है, जैसे प्राचीन काल में धनवर्द्धन का नाश हो गया था॥ ३६-४०॥

शतानीक उवाच

स कथमन्तरं पूर्वमन्नस्य द्विजसत्तम। किमन्तरं तथान्नस्य कथं वा तत्कृतं भवेत् ॥ ४१ ॥

शतानीक कहते हैं- हे द्विजसत्तम! अन्न ग्रहण के पूर्व वह कैसा था? अन्न ग्रहण के पश्चात् वह कैसा हो गया तथा उससे क्या (त्रुटि) हुआ ॥ ४१ ॥

सुमन्तुरुवाच

पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे। धनवर्धननामा वै समृद्धौ धनधान्यतः ॥ ४२ ॥
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम्। सपुत्रभ्रातृभिः सार्धं तथा वै मित्रबन्धुभिः ॥

आहारं कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ॥ ४३ ॥

अथ तदभुञ्जतस्तस्य अन्नं शब्दो महानभूत्। करुणः कुरुशार्दूल अथ तं स प्रधावितः ॥ ४४ ॥
त्यक्त्वा स भोजनं यावन्निष्क्रान्तो गृहबाह्यतः। अथ शब्दस्तिरोभूतः स भूयो गृहमागतः ॥ ४५ ॥
तमेव भाजनं गृह्य आहारं कृतवानृष। भुक्तशेषं महाबाहो आहारं स तु भुक्तवान् ॥ ४६ ॥
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप। तस्मादन्नं न राजेन्द्र अशनीयादन्तरा क्वचित् ॥ ४७ ॥
च चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्। रसो भवत्यत्यशनाद्रसाद्रोगः प्रवर्तते ॥ ४८ ॥

सुमन्तु कहते हैं- हे राजन्! यह प्राचीन कृतयुग की घटना है। तब पुष्कर नगरी में धनवर्धन नामक धन-धान्य से सम्पन्न वैश्य रहता था। हे राजेन्द्र! एक बार वह ग्रीष्मकाल में वैश्वदेव करके मित्र-बन्धु-बान्धव-पुत्र-भ्राता आदि के साथ ही विविध भक्ष्य-भोज्य का आहार ग्रहण कर रहा था तभी उसने “अन्न” शब्द सुना। हे कुरुशार्दूल! वह अपने भोजन को वहीं छोड़कर उस शब्द की ओर दौड़ा कि तभी वह शब्द लुप्त हो जाने के कारण उसे लौट आना पड़ा। हे राजेन्द्र! तब उसने अपना बचा हुआ खाना खाया। हे महाबाहो! उसने उसे खाया जिसे छोड़कर गया था। लेकिन भोजन खाते ही वह १०० टुकड़ों में परिणत हो गया। हे राजेन्द्र! भोजन में कभी भी व्यवधान न करें। कभी भी अधिक भोजन करना तथा जूठे मुँह कहीं भी जाना वर्जित है। अति भोजन करने से रसवृद्धि होने के कारण रोगोत्पत्ति होती है ॥ ४२-४८ ॥

स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम्। न भवन्ति रसे जाते नराणां भरतर्षभ ॥ ४९ ॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्। अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५० ॥
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम। गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥ ५१ ॥

हे भरतर्षभ! रसवृद्धि हो जाने से स्नान-दान-जप-होम-देवपितृ पूजा करना दुष्कर हो जाता है। तभी अत्यन्त भोजन से आरोग्य-आयुष्य एवं स्वर्ग नहीं मिल पाता। यह पुण्य हेतु हानिकारक एवं द्वेषकारक है। व्यक्ति अतिभोजन करने की प्रवृत्ति त्याग दे। हे राजन्! उच्छिष्ट रहने वाला ब्राह्मण यक्ष, भूत, पिशाच, राक्षस आदि का गम्य बन जाता है। यह निःसन्दिग्ध है ॥ ४९-५१ ॥

शुचित्वमाश्रयेत्तस्माच्छुचित्वान्मोदते दिति। सुखेन चेह रमते इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ ५२ ॥

इस कारण व्यक्ति को चाहिये कि वह शुद्ध रहे। शुद्ध रहने से भगवती दिति प्रसन्न होती है। मनुष्य इहलोक में आनन्द प्राप्त करता है। यह वैदिकी श्रुति का कथन है ॥ ५२ ॥

शतानीक उवाच

शुचितामियात्कथं विप्रः कथं चाशुचितामियात्। एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र कौतुकं परमं मम ॥ ५३ ॥

शतानीक कहते हैं- हे विप्रेन्द्र! ब्राह्मण को पवित्रता कैसे मिलती है? वह कैसे अपवित्र होता है? यह जानने हेतु मुझे कुतूहल हो रहा है ॥ ५३ ॥

सुमन्तुरुवाच

उपस्पृश्य शुचिर्विप्रो भवते भरतर्षभ। विधिवत्कुरुशार्दूल भवेद्विधिपरो ह्यतः॥ ५४॥

सुमन्तु कहते हैं— हे कुरुशार्दूल! हे भरतर्षभ! ब्राह्मण को उपस्पर्श से पवित्रता मिलती है। इसी से वह विधानविद् होता है॥ ५४॥

शतानीक उवाच

उपस्पर्शविधिं विप्र कथय त्वं ममाखिलम्। शुचित्वमाप्नुयाद्येन आचान्तो ब्राह्मणो द्विजः॥ ५५॥

शतानीक कहते हैं— हे विप्र! कृपया उपस्पर्श विधि का वर्णन करें। जिसके द्वारा आचार्य, ब्राह्मण तथा द्विज पवित्र हो जाते हैं॥ ५५॥

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणु विप्रो यथा भवेत्। शुचिर्भरतशार्दूल विधिना येन वा विभो॥ ५६॥
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा। उपविश्य शुचौ देशे बाहुं कृत्वा च दक्षिणम्॥ ५७॥
जान्वन्तरे महाबाहो ब्रह्मसूत्रसमन्वितः। सुसमौ चरणौ कृत्वा तथा बद्धशिखो नृप॥ ५८॥
न तिष्ठन्न च संजल्पंस्तथा चानवलोकयन्। न त्वरन्कुपितो वापि त्यक्त्वा राजन्सुदूरतः॥ ५९॥
प्रसन्नाभिस्तथाद्विस्तु आचान्तः शुचितामियात्। नोष्णाभिर्न सफेनाभिर्युक्ताभिः कलुषेण च॥ ६०॥
वर्णेन रसगन्धाभ्यां हीनाभिर्न च भारत। सबुदबुदाभिश्च तथा नाचामेत्पण्डितो नृप॥ ६१॥

सुमन्तु कहते हैं— हे भरतशार्दूल राजन्! आपने साधु प्रश्न पूछा है। अब उस विधि को सुनिये जिससे ब्राह्मण पवित्र हो जाता है। हाथ-पैर प्रक्षालित करके पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख करके पवित्र स्थल पर बैठें। अपनी दाहिनी भुजा को दक्षिण की ओर करके कंधे पर यज्ञोपवीत को धारण करें। अपने पैरों को समान करके शिखा बन्धन करें। अब न तो बैठते, न तो बातें करते, न तो देखते, न तो क्रुद्ध होते, न तो दूर से किसी वस्तु का परित्याग करते, वह ब्राह्मण निर्मल जल से आचमन द्वारा पवित्र हो जाता है। हे महाबाहु राजन्! हे भरतर्षभ! वह जल उष्ण न हो, फेनयुक्त कलुषित न हो, वर्णयुक्त तथा रस-गन्धहीन न हो। उसमें बुदबुद करने वाले जलबिन्दु भी न हों, ऐसे जल से आचमन करें॥ ५६-६१॥

पञ्चतीर्थानि विप्रस्य श्रूयन्ते दक्षिणे करो। देवतीर्थं पितृतीर्थं ब्रह्मतीर्थं च मानद॥ ६२॥
प्राजापत्यं तथा चान्यत्तथान्यत्सौम्यमुच्यते। अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते॥ ६३॥
ब्राह्मं तीर्थं वदन्त्येतद्वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः। कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुल्यग्रे तु दैवतम्॥ ६४॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम्। करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि॥ ६५॥

हे सम्मानित राजन्! ब्राह्मण के दाहिने हाथ में ५ तीर्थों की स्थिति कही गयी है। ये हैं— देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ तथा सौम्यतीर्थ। अंगुष्ठमूल से जिस रेखा का उदय होता है, उसे वसिष्ठादि द्विजश्रेष्ठगण ने ब्राह्मतीर्थ कहा है। कनिष्ठा उँगली के मूल में प्राजापत्यतीर्थ तथा उँगलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ की स्थिति है। तर्जनी तथा अंगुष्ठ के मध्य का भाग पितृतीर्थ है। देवकार्य में जो प्रशस्त तीर्थ है, वह सौम्यतीर्थ हथेली के मध्य में स्थित है॥ ६२-६५॥

देवार्चाबलिहरणं प्रविक्षणमेव च। एतानि देवतीर्थेन कुर्यात्कुरुकुलोद्बह॥ ६६॥
अन्ननिर्वपणं राजंस्तथा सपवनं नृप। लाजाहोमं तथा सौम्यं प्राजापत्येन कारयेत्॥ ६७॥
कमण्डलूपस्पर्शनं दधिप्राशनमेव च। सौम्यतीर्थेन राजेन्द्र सदा कुर्याद्विचक्षणः॥ ६८॥
पितृणां तर्पणं कार्यं पितृतीर्थेन धीमता। ब्राह्मेण चापि तीर्थेन सदोपस्पर्शनं परम्॥ ६९॥

घनाङ्गुलिकरं कृत्वा एकाग्रः सुमना द्विजः। त्रिः कृत्वा यः पिबेदापो मुखशब्दविवर्जितः॥ ७०॥
शृणु यत्फलमाप्नोति प्रीणाति च यथा सुरान्। प्रथमं यत्पिबेदाप ऋग्वेदस्तेन तृष्यति॥ ७१॥
यद्वितीयं यजुर्वेदस्तेन प्रीणाति भारत। यत्तृतीयं सामवेदस्तेन प्रीणाति भारत॥ ७२॥
प्रथमं यन्मृजेदास्यं दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः। अथर्ववेदः प्रीणाति तेन राजन्नसंशयः॥ ७३॥
इतिहासपुराणानि यद्वितीयं प्रमार्जति। यन्मूर्धानं हि राजेन्द्र अभिषिञ्चति वै द्विजः॥ ७४॥
तेन प्रीणाति वै रुद्रं शिखामालभ्य वै ऋषीन्। यदक्षिणी चालभते रविः प्रीणाति तेन वै॥ ७५॥
नासिकालम्भनाद्वायुं प्रीणात्येव न संशयः। यच्छ्रोत्रमालभेद्विप्रो दिशः प्रीणाति तेन वै॥ ७६॥

अंगुलियों को सटाकर एकाग्र मन से तथा स्वच्छ मन से जो ब्राह्मण बिना जल सुड़कने की आवाज किये तीन बार जल पीता है, उसे जो फल मिलता है तथा उससे जैसे देवगण तुष्ट होते हैं, वह सुनिये। पहली अंजलि जलपान से ऋग्वेद, दूसरी अंजलि जलपान से यजुर्वेद, तीसरी अंजलि जलपान से सामवेद प्रसन्न होता है। हे राजन्! जो दाहिने हाथ के अंगुष्ठ के मूलभाग से मुख साफ करता है, उससे अथर्ववेद सन्तुष्ट हो जाता है। दो बार मार्जन करने वाले से इतिहास तथा पुराण प्रसन्न होते हैं। हे राजेन्द्र! अपने मस्तक का जो द्विज अभिषेक करता है, साथ ही शिखा का स्पर्श करता है, उससे रुद्र तथा ऋषि प्रसन्न हो जाते हैं। आँखों का स्पर्श करने वाले से सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं। नासिका को स्पर्श करने वाला वायुदेव को, कान का स्पर्श करने वाला द्विज दिशाओं को सन्तुष्ट कर देता है॥ ७०-७६॥

यमं कुबेरं वरुणं वासवं चाग्निमेव च। यद्बाहुमन्वालभते एतान्प्रीणाति तेन वै॥७७॥
यन्नाभिमन्वालभते प्राणानां ग्रन्थिमेव च। तेन प्रीणाति राजेन्द्र इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥७८॥
अभिषिञ्चति यत्पादौ विष्णुं प्रीणाति तेन वै। यद्भूम्याच्छादकं वारि विसर्जयति मानद॥७९॥
वासुकिप्रमुखात्रागांस्तेन प्रीणाति भारत। यद्विन्दवोऽन्तरे भूमौ पतन्तीह नराधिप॥८०॥
भूतग्रामं ततस्तस्तु प्रीणन्तीह चतुर्विधम्। अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या लभेत चाक्षिणी नृप॥८१॥
अनामिकाङ्गुष्ठकाभ्यां नासिकामालभेन्नृप। मध्यमाङ्गुष्ठाभ्यां मुखं संस्पृशेद्भरतर्षभ॥८२॥
कनिष्ठिकाङ्गुष्ठकाभ्यां कर्णमालभते नृप। अङ्गुलीभिस्तथा बाहुमङ्गुष्ठेन तु मण्डलम्॥८३॥

भुजाओं को स्पर्श करने वाले से यम, कुबेर, वसु, वरुण, अग्नि प्रसन्न होते हैं। प्राणग्रंथि तथा नाभि का स्पर्श करने वाले से राजेन्द्र प्रसन्न होते हैं। यह वैदिकी श्रुति का कथन है। जो अपने पैरों का अभिसिंचन करता है, उससे विष्णु प्रसन्न होते हैं। हे सम्मान्य नृप! जो पृथिवी पर इतना जल छोड़ता है कि पृथिवी ढक जाये, उससे वासुकि प्रमुख सूर्य प्रसन्न होते हैं। हे नरेश भारत! जिसके द्वारा पृथिवी पर जलबिन्दु गिराये जाते हैं, उससे सभी चतुर्दिक् वाले भूतग्राम प्रसन्न हो जाते हैं। हे राजन्! अंगुष्ठ तथा एक अंगुली से नेत्र का स्पर्श तथा अनामिका एवं अंगुष्ठ से नासिका का, मध्यमा एवं अंगुष्ठ से मुख का, कनिष्ठिका एवं अंगुष्ठ से कान का, अंगुली से हाथों का तथा अँगूठे से समस्त मण्डल का स्पर्श करें। ७७-८३॥

नाभिं कुरुकुलश्रेष्ठ शिरः सर्वाभिरेव च। अङ्गुष्ठोग्निर्महाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी॥ ८४॥
अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा इन्द्र विभो। प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेया तस्माद्भरतसत्तम॥ ८५॥
एवमाचम्य विप्रस्तु प्रीणाति सततं जगत्। सर्वाश्च देवतास्तात लोकांश्चापि न संशयः॥ ८६॥
तस्मात्पूज्यः सदा विप्रः सर्वदेवमयो हि सः। ब्राह्मेण विप्रतीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत्॥ ८७॥

नाभि एवं शिर का स्पर्श सर्वाङ्गुलियों से करें। हे कुरुकुल श्रेष्ठ! अँगूठा अग्नि है। हे महाबाहु! तर्जनी वायु है। हे श्रेष्ठ! अनामिका सूर्य है, कनिष्ठा इन्द्र है। हे भरतर्षभ! मध्यमा अंगुली प्रजापति है। हे बन्धु! विप्रगण इस प्रकार से आचमन द्वारा सभी लोकों को, संसार को तथा देवगण को प्रसन्न कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। तभी सर्वदेवमय ब्राह्मण को सदैव पूज्य समझें। यह जो ब्राह्मरूप विप्रतीर्थ है, इससे प्रतिदिन काल का उपस्पर्श करें (ब्राह्मतीर्थ अर्थात् अंगुष्ठ मूल)॥ ८४-८७॥

कायत्रैदेशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन। हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः॥ ८८॥
वैश्योद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः। उद्धृते दक्षिणे पाणानुपवीत्युच्यते बुधः॥ ८९॥
सव्येन प्राचीनावीती निवीती कण्ठसंज्ञिते। मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम्॥ ९०॥
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मन्त्रवित्। उपवीत्याचमेन्नित्यमन्तर्जानु महीपते॥ ९१॥
एवं तु विप्रो ह्याचान्तः शुचितां याति भारत। यास्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत॥ ९२॥

पैत्रिक देह तथा त्रैदेशिक (मन) से कभी भी उपस्पर्श सम्पन्न नहीं होता। हृदय के गीतों से ब्राह्मण पवित्र (प्रसन्न) होते हैं। कण्ठगत गीतों से राजा प्रसन्न (पवित्र) होता है। वैश्य जल से पवित्र होता है। स्पृष्ट रूप से भुक्त जल से शूद्र पवित्र होता है। जब दाहिना हाथ उठाया जाये, तब वह (यज्ञोपवीत) उपवीति की स्थिति है। सव्य होने पर प्राचीनावीति तथा यज्ञोपवीत जब केवल गले में लटकता रहे तब वह निवीति है। यदि मेखला, चर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कमण्डलु नष्ट हो जाता है, तब मन्त्रोच्चारण करके जलप्राशन से शुद्धि होती है। हे राजन्! जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत को बायें कन्धे पर रखकर दाहिने हाथ को दोनों घुटनों के मध्य में रखकर आचमन करता है, वह पवित्र हो जाता है॥ ८८-९२॥

गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भारतसत्तम। यान्यङ्गुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै॥ ९३॥
सर्वदेवमयो राजन्करो विप्रस्य दक्षिणः। हस्तोपस्पर्शनविधिस्तवाख्यातो महीपते॥ ९४॥
एषु सर्वेषु लोकेषु येनाचान्तो दिवं व्रजेत्॥ ९५॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
संस्कारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

हे भारतशार्दूल! विप्र के दाहिने हाथ में जो हस्तरेखायें हैं, वे गंगा आदि पवित्र नदियाँ हैं। हे राजन्! ब्राह्मण का दाहिना हाथ तो सभी देवताओं से युक्त है। हे महीपति! मैं आचमन का विधान कह चुका हूँ जो विधिवत् आचमन करता है, वह सर्वलोकों में निवास करके स्वर्ग प्राप्त करता है॥ ९३-९५॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण के शतार्ध साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
संस्कार का वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥३॥

★ ★ ★